लोकतंत्र के नाच में शिक्षा की बात

यह चार दलों के चुनावी घोषणापत्रों पर एक फौरी टिप्पणी है। इसमें कांग्रेस, भाजपा, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र शामिल हैं। इन दलों के इतिहास और इनके एजेंडा के बारे में मेरी जानकारी काफी सीमित है और ये सीमा इस टिप्पणी में भी दिखाई देगी।

यह सुखद आश्चर्य की बात है कि इन पार्टियों के घोषणापत्रों में इनके (असली) रंग दिख रहे हैं। हम सुनते आए हैं कि घोषणापत्र में कही बातें महज दिखावा होती हैं और उनमें कुछ भी कह दिया जाता है, लेकिन इनको पढ़ते हुए मुझे लगा कि इन पार्टियों के घोषणापत्रों और इनके मुद्दों- जिनके लिए ये लड़ते भी हैं- के बीच गहरा संबंध है। ये वाकई गंभीरता से पढ़े और समझे जाने वाले दस्तावेज हैं जिन पर हमें ज्यादा ध्यान देना चाहिए। यहां मेरा मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि इन घोषणापत्रों में किए गए वायदों को ये पार्टियां पूरा करेंगी ही, बल्कि मैं यह कहना चाहता हूं कि इन घोषणापत्रों में इन पार्टियों के सरोकार और रुझान बेहद स्पष्ट हैं। वे इन पर टिकते हैं या नहीं, यह दीगर सवाल है।

कांग्रेस अपनी विचारधारा की जड़ें धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रवाद, सामाजिक न्याय और सभी (खासतौर पर आम आदमी) की आर्थिक उन्नति में देखती है। कांग्रेस अपने घोषणापत्र में अपनी विरासत और संतुलन की विचारधारा के बारे में विस्तार से बात करती है। इसे इस तरह भी देखा जा सकता है कि यह एक मध्यममार्गी एप्रोच लेते हुए भी महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर कोई स्पष्ट 'स्टैण्ड' नहीं लेती। इसमें एक झलक इस बात की भी मिलती है कि किस प्रकार कांग्रेस अपने दरवाजे हर तरह की विचारधारा के लिए खुले रखती है। यह बात उसकी ताकत और कमजोरी दोनों है और इसी वजह से वह राजनीतिक समीकरण भी बैठा पाती है। इसके घोषणापत्र में स्पष्ट दिखता है कि इसकी विरासत न केवल राष्ट्रीय है बल्कि 'एक परिवार' की भी है। और राष्ट्रीय विरासत की उसकी बात को भी परिवार के मद्देनजर ही समझना चाहिए।

भाजपा स्पष्ट रूप से एक ऐसी पार्टी है जो अपनी प्रेरणा के लिए अतीत में विचरण करती है और उसी के आधार पर भविष्य का निर्माण भी करना चाहती है। लेकिन समस्या यह है कि उनका अतीत एकतरफा है और यदि आप ऐतिहासिक विश्लेषण करें तो स्पष्ट रूप से मनगढ़न्त है। इसके लिए सारी अच्छाइयों का एक मात्र स्रोत हिन्दुत्व ही है और हिन्दुत्व खुद में एकदम बेदाग है। ये हिन्दुत्व के सभी विचारों और धार्मिक भावनाओं के प्रति खुलेपन की बात करते हैं लेकिन हिन्दुत्व ने खुद जो भेदभाव फैलाया उसकी बात नहीं करते। न ही ये पिछली ज्यादतियों को सही करने की बात करते हैं। इससे मन में सवाल उठने लगता है कि क्या ये सूचना-तकनीकी और आधुनिक वित्तीय ढांचों की मदद से वापस पुरातन व्यवस्था को पुनर्जीवित करना चाहते हैं ? पूरे घोषणापत्र को पढ़कर इस सवाल का जवाब 'हां' में ही लगता है। वे कहीं समता, न्याय और सामाजिक सरोकारों की आज की व्याख्या की बात नहीं करते या बहुत ही चलताऊ ढंग से करते हैं।

सीपीएम आजादी के 60 साल बाद भी लोगों की आकांक्षाएं न पूरे होने पर अपने तर्क की इमारत खड़ी करती है। शोषित-वंचित तबकों को ऊपर उठाने की मांग और नवउदारवादी एजेंडा का विरोध घोषणापत्र में स्पष्ट व पुरजोर है। इस घोषणापत्र की पृष्ठभूमि में वैश्विक आर्थिक संकट कहीं ज्यादा स्पष्ट नजर आता है।

सीपीआई अपने आप को अपनी ''साम्राज्यवाद-विरोधी, धर्मनिरपेक्ष तथा आत्मनिर्भर आर्थिक विकास की गौरवशाली परम्परा'' जिसमें सबके लिए आर्थिक व सामाजिक न्याय सुनिश्चित हो- पर स्थापित करता है। यह अपनी ऐतिहासिक विरासत को अपने बन्धु सीपीएम से कहीं ज्यादा महत्त्व देता है। इनका ऐतिहासिक विरासत पर जोर देना उतना ही मुखर है जितना कांग्रेस का, पर एक उल्लेखनीय अंतर के साथ-किसी परिवार पर जोर का न होना क्योंकि जोर देने के लिए कोई परिवार है ही नहीं।

सब के सब आर्थिक प्रगति, सुरक्षा और आतंकवाद पर बहुत जोर देते हैं। और ये आज का बड़ा मुद्दा है भी।

ये सब एक नजर में की हुई टिप्पणियां हैं और शायद बहुत मूल्यवान न हों, जिनका मकसद राजनीतिक दलों की टांग खींच कर मजा लेना भी है; जो कि लोकतंत्र में एक नागरिक का जायज हक है, खासकर तब, जब चुनाव सिर पर हों।

शिक्षा पर आते हुए :

सीपीआई को छोड़कर सभी अपने घोषणापत्रों में शिक्षा पर बल देते हैं, सबके लिए शिक्षा पर बल देते हैं और शिक्षा के लिए घरेलू सकल राष्ट्रीय उत्पाद के कम से कम 6% खर्च का वायदा करते हैं। पर इनमें समानता यही जरा सी है। इनकी शिक्षा के प्रति दृष्टि तथा राष्ट्र के जीवन में उसके स्थान के प्रति नजरिया कम से कम पहली नजर में तो बहुत भिन्न-भिन्न नजर आता है।

कांग्रेस शिक्षा को सशक्तीकरण, धर्मनिरपेक्ष राजनीति को मजबूत करने और सामाजिक न्याय के औजार के रूप में सबसे ज्यादा बताती है। यह चाहती है कि शिक्षा का लोकतंत्र की प्रक्रिया में योगदान हो। वहीं भाजपा शिक्षा को आर्थिक व तकनीकी विकास के माध्यम के रूप में ज्यादा देखती है। ऐसा नहीं है कि गरीबी दूर करने, बेहतर जेंडर समानता के माध्यम के रूप में यह शिक्षा की बात नहीं करती, यह ऐसा उल्लेख अवश्य करती है। पर पूरा पत्र पढ़ने पर साफ दिखता है कि शिक्षा की भूमिका है- 'परम्परा' को आगे बढ़ाना तथा तकनीकी विकास करना। सशक्तीकरण, सामाजिक न्याय, लोकतांत्रिक मूल्य और धर्मनिरपेक्षता, ये सब विचार इसकी असल सोच में जगह नहीं पाते। वामपंथी पार्टियां शिक्षा की व्यापक भूमिका पर सबसे कम कहती हैं, यद्यपि ये मूल्य इनके घोषणापत्रों में एक महत्त्वपूर्ण पहलू के रूप में दिखते हैं। यह कुछ हैरानी की बात लगती है। हालांकि ये भी सही है कि वाम विचारधारा में शिक्षा को सामाजिक सत्ता-समीकरणों का पुनर्निमाण करने वाले सामाजिक उपकरण के रूप में देखा जाता है, अतः शिक्षा के माध्यम से सशक्तीकरण आदि में शायद उनका बहुत विश्वास न हो।

शिक्षा के कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दों की ओर नजर डालें :

सभी सरकार द्वारा सकल घरेलू उत्पाद के 6% खर्च का वायदा करते हैं। भाजपा चाहती है कि प्राइवेट पार्टनर इसमें 3% और डालकर इसे 9% बना दें। यह सुझाव एक दुधारी तलवार है : शिक्षा पर अधिक खर्च होना लेकिन साथ ही इसमें बाजारी शक्तियों और विदेशी खिलाड़ियों का प्रवेश होना। इस प्रकार 3% व्यय भले ही दिखता एक योगदान हो, पर वास्तव में एक 'व्यापारिक निवेश' हो सकता है। व्यवसाय और शिक्षा के बाजार को भुनाने वाली विदेशी कम्पनियां जितना पैसा लगाएंगी उससे कहीं ज्यादा सरकार या जनता से वसूल लेंगी। यह अब कोई छुपी बात नहीं रह गई है। आजकल यदि आप अपने आपको अन्तर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संस्था कहने वाली संस्थाओं की शब्दावली देखें तो वहां संस्थाएं 'खुदरा व्यापारी' बन चुकी हैं, इनके काम को बेचने की वस्तु के रूप में देखा जाता है। अतः 3% प्राइवेट पार्टनर के योगदान को थोड़ा सावधानी से देखा जाना चाहिए।

सभी द्वारा, सारे बच्चों के लिए अच्छी गुणवत्ता वाली प्रारम्भिक शिक्षा पर जोर है। सीपीएम तथा भाजपा दोनों उच्च माध्यमिक शिक्षा पर भी स्पष्ट जोर देते, वैसे यह ठीक है कि सभी शिक्षा की गुणवत्ता की बात करते हैं, पर गुणवत्ता के मायने और उसे पाने के तरीके अपनी अलग कहानी कह जाते हैं। कांग्रेस इसे परिणामों और उपलब्धियों पर जोर देने के रूप में देखती है। अर्थात् गुणवत्ता के नापने में बच्चों के सीखने में उपलब्धि स्तर की मुख्य भूमिका रहेगी। वैसे तो इसमें कोई बुराई नहीं है लेकिन यह भी देखना होगा कि क्या मापा जा रहा है और कैसे। आमतौर पर केवल अच्छे नम्बर लाने वाली शिक्षा न तो किसी को समर्थ बना पाती है न ही अच्छा इंसान। पर आज भारत सरकार अनुदान दाता संस्थाओं के दबाव में गणित और विज्ञान में किए जाने वाले अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यांकन में शामिल होने का मन बना चुकी हैं। ये नम्बर के आधार पर शिक्षा की गुणवत्ता उसी की अभिव्यक्ति है। शिक्षा की गुणवत्ता जो एक समर्थ और समझदार नागरिक के रूप में देखी जाए ऐसा कोई पार्टी कहती हुई नहीं लगती।

वैसे वामपंथी दल गैर-साम्प्रदायिकता और लोकतांत्रिक मूल्यों पर बल देते हैं। कांग्रेस के घोषणापत्र को थोड़ा-सा उदार होकर पढ़ें तो यही बिन्दु उसमें पढ़ा जा सकता है क्योंकि वे बारम्बार लोकतांत्रिक मूल्यों और शिक्षा के जरिए सशक्तीकरण की बात करते हैं, लेकिन वे अलग से इसका उल्लेख नहीं करते। पर इसमें अपने नजरिए के फैलाव के लिए शिक्षा का उपयोग अधिक नजर आता है और शिक्षार्थी का लोकतंत्र में समझदार चुनाव करने वाला व्यक्ति के रूप में विकास कम।

कांग्रेस जिस तरह गुणवत्ता सुधार की बात करती है वह भी दुधारी तलवार है : जैसे खंड स्तर पर ज्यादा गुणवत्ता-सम्पन्न स्कूल खोलना। इससे आम सरकारी स्कूलों की विशाल संख्या में अत्यावश्यक गुणवत्ता को हल्का करके देखने की समस्या पैदा हो जाएगी। इसको यदि हम योजना आयोग की सरकारी-निजी-साझेदारी (पब्लिक-प्राइवेट-पार्टनरशिप) के अन्तर्गत स्कूल खोलने की स्कीम से जोड़कर देखें तो यह जनता के पैसे से मुनाफा कमाने हेतु निजी खिलाड़ियों को पिछले द्वार से प्रवेश देती नजर आती है। शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए अभी चल रहे संस्थानों को दरकिनार करके नए संस्थान खोलने की नीति कांग्रेस की पुरानी नीति है। उन्होंने नवोदय विद्यालय खोले, जो जवाहर लाल के नाम को और महिमामंडित करने के साथ साथ गांवों में रहने वाले प्रभावी लोगों के बच्चों के लिए एक रास्ता

तैयार भी करते हैं। वे विश्व स्तरीय विश्वविद्यालय खोलना चाहते हैं। पर आम स्कूल को सुधारने और आम विश्वविद्यालय को अच्छा बनाना उनको बहुत आकर्षक नहीं लगता। ये बदलती मध्यमवर्ग की आकांक्षाओं की पूर्ति के तरीके तो हो सकते हैं, पर आम बच्चे को अच्छी शिक्षा मुहैया करवाने के लिए कुछ खास मददगार नहीं हो सकते। सिर्फ यही नहीं कि गुणवत्ता पर सबकी नजर कमजोर है, उसके उपयुक्त तरीके पर भी कोई खास खुलासा नहीं है। करेंगे कैसे कोई नहीं बताता, कांग्रेस की ऊपर विवेचित योजना के अलावा।

भाजपा शिक्षा नीति पर आयोग बैठाने की बात करती है, जो एक अच्छी खबर भी हो सकती है और खतरनाक भी। पार्टी के पिछले रिकॉर्ड को देखते हुए यह चिन्ता का विषय ही अधिक लगती है। भाजपा के अगूंठे तले बैठा एक राष्ट्रीय शिक्षा आयोग भारत की शिक्षा नीति की धर्मनिरपेक्ष बुनियाद को भारी नुकसान पहुंचा सकता है, वहीं दूसरी ओर एक अच्छा विचारशील आयोग उसमें बड़ा इजाफा भी ला सकता है। बीजेपी का किताबें बनाने का इतिहास, उनका राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2000 लिखवाने का इतिहास और राजस्थान के विद्यालयों में सुबह की सभा को हिन्दू धार्मिक उपक्रम बनाने की कवायद को देखते हुए उनके आयोग बैठाने के वायदे से खुश होने के बजाए जनता को डर अधिक लगना चाहिए।

हर बच्चे के शिक्षा के अधिकार और समान स्कूल व्यवस्था का वायदा केवल सीपीएम के घोषणापत्र में ही है। वह भी एक पंक्ति में। ऐसा लगता है कि समान स्कूल सबको मिले इसको तो सभी दरगुजर कर चुके हैं। ये जरूर शुभ संकेत है कि सीपीएम निजी व विदेशी खिलाड़ियों द्वारा शिक्षा के बाजार का अनियंत्रित शोषण रोकने की बात करती है। कांग्रेस व भाजपा दोनों ही उसे प्रोत्साहित करते ही दिखते हैं- वे या तो सीधे यह कहते हैं या अप्रत्यक्ष रूप से इसकी ओर इशारा करते हैं।

कुछ अन्य बिन्दु भी हैं जिनका सावधानीपूर्वक विश्लेषण करना चाहिए, पर यहां पर उस विस्तार में जाना अभी संभव नहीं है, इसलिए मैं यहां रुक रहा हूं। आम जन शिक्षा पर इस सबसे क्या मांग कर सकता है ? इस सवाल पर सोचना सीपीएम के घोषणापत्र से शुरू कर सकते हैं। सीपीएम ने बीजेपी और कांग्रेस जितना स्थान तो शिक्षा की बात करने में नहीं खर्च किया पर संक्षेप में बहुत महत्त्वपूर्ण मुद्दों को जरूर रख दिया है।

शिक्षा पर सरकारी खर्च राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद का 6% हो। ये अनुमान कोठारी आयोग के जमाने से चला आ रहा है, इसपर किसी ने अभी तक कुछ नहीं किया, यदि इन चुनावों के वायदे को मानने के लिए सभी पार्टियों को मंजूर किया जा सके तो यह एक बड़ी उपलब्धि होगी। शिक्षा के अधिकार विधेयक को लागू करना; इसको लागू करने के लिए आवश्यक वित्तीय प्रतिबद्धता का अधिकांश भाग केन्द्र सरकार द्वारा वहन किया जाना। ये अब देखना लाजमी हो गया है। पर जन चेतना के बिना यदि किसी शब्दावली में ऐसा कोई विधेयक आया भी तो वो सबको समान शिक्षा के बजाए विभेदकारी शिक्षा की योजना हो सकती है। जैसे अभी के विधेयक में जैसी गुणवत्ता की शिक्षा सरकार उचित समझती है वैसी करने का प्रावधान है। इसका अर्थ हुआ कि गरीब बच्चों के लिए ढुलमुल सरकारी स्कूल, जिनमें पढ़ाने वालों को कम वेतन मिले और साधन संपन्न लोगों के लिए बेहतर स्कूल। अतः सबको बराबर के अच्छे स्कूल मिलें यह सुनिश्चित करना जरूरी है।

इसी तरह के कुछ और महत्त्वपूर्ण बिन्दु हैं : उच्च माध्यमिक शिक्षा का विस्तार ताकि बीच में शिक्षा छोड़ देने वालों को रोका जा सके; स्कूलों में शिक्षा की गुणवत्ता और ढांचे में सुधार, निजी शैक्षणिक संस्थाओं में फीस, प्रवेश तथा शिक्षाक्रम पर नियन्त्रण रखने के लिये कानून बनाना, उच्च शिक्षा में कोई एफडीआई (सीधा विदेशी निवेश) नहीं; विदेशी शिक्षा प्रदाता विधेयक को हटाना, शिक्षा के सभी स्तरों पर प्रगतिशील व लोकतांत्रिक शिक्षाक्रम व पाठ्यक्रम तैयार करवाना जो भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता को स्वीकार करते हों, आदि। इन सब चीजों में एक और मुद्दा जोड़ना होगा जिसपर किसी ने कोई बात नहीं की। वह है अध्यापक शिक्षा को बेहतर करने और अध्यापक शिक्षा में एनसीटीई की देखरेख में चलने वाले भ्रष्टाचार पर रोक लगाना।

हमें यह समझना होगा कि इस वक्त भारतीय लोकतंत्र को बहुत खतरे हैं। कांग्रेस देश को परिवार के साम्राज्य में तब्दील देखना चाहती है, बीजेपी से धर्मनिरपेक्षता और समाजिक समता को खतरा है, जाति आधारित दल अपनी जाति और पार्टी के मालिक को धन और शक्ति संपन्न करना चाहते हैं। और वाम दल कभी नागनाथ को रोकने के लिए सांपनाथ की छाया तलाशने लगते हैं और कभी सांपनाथ को गाली देते हुए नागनाथ से गलबहियां भरने लगते हैं। इस विचारहीन प्रक्रिया में पूरी तरह सत्ता के दलदल और आत्म-गौरव में मस्त सत्ता सुखभोगी बन चुके हैं। इन सबको पहचानने की नजर शिक्षा से ही विकसित हो सकती है, शायद ये सभी जानते हैं। इसलिए शिक्षा की बात कुछ इस अंदाज में करते हैं कि वो इनके सत्ता खेल की कलई खोलने वाली योग्यता लोगों में पैदा न कर सके। ◆

रोहित धनकर